पार्टी का गठन

वर्तमान युग, सचेत इतिहास निर्माण का युग है । यह युग साम्राज्यवाद एवं सर्वहारा क्रांतियों का युग है । इस युग में किसी भी देश में सफलतापूर्वक क्रांति करने के लिये और क्रांति को सुदृढ़ करने और आगे बढ़ाने के लिए सर्वहारा वर्ग की क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी, एक आवश्यक पूर्व शर्त है । ऐसी पार्टी के बिना क्रांति को स्थायित्व प्रदान करना तो दूर सत्ता दखल भी संभव नहीं है ।

दुर्भाग्यवश हमारे देश में कोई अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी मौजूद नहीं है । हमारे देश में एक क्रांतिकारी कम्युनिस्ट शिविर है । इस शिविर के घटक कई कम्युनिस्ट ग्रुप हैं । इसमें से कुछ ग्रुप अपने आप को पार्टी मानते हैं, हालांकि वे एक क्रांतिकारी पार्टी की अर्हताओं को पूरा नहीं करते और वे वस्तुतः अन्य ग्रुपों की तरह पूर्व-पार्टी संगठन ही हैं । एक अखिल भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन इन पूर्व-पार्टी संगठनों के सामने केन्द्रीय कार्यभार है ।

पिछले साढ़े तीन दशकों से अखिलभारतीय पार्टी के गठन की कोशिशें होती रही हैं लेकिन इसके बावजूद यह कार्यभार पूरा नहीं हो सका है । शिविर के पूर्व-पार्टी संगठनों के बीच आज अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के आकलन, भारतीय क्रांति के कार्यक्रम तथा लेनिनवादी सांगठनिक उसूलों के आधार पर अपने पूर्व-पार्टी संगठनों के संचालन के सवाल के अलावा सर्वहारा वर्ग के बीच अपने काम को केन्द्रित करने या न करने के बारे में, पार्टी संगठन के विभिन्न स्तरों पर नेतृत्वकारी निकायों के पेशेवर क्रांतिकारियों से निर्मित होने या न होने के बारे में, पार्टी के गुप्त ढांचे के बारे में, क्रांतिकारी जनदिशा के बारे में, वर्तमान स्थिति में सशस्त्र संघर्ष के संचालन के बारे में, 1969 में सी.पी.आई.(एम.एल.) के गठन के सवाल पर, चुनावों के प्रति रवैये ... अनेक मुद्दों पर मतभेद हैं । निःसन्देह इन मतभेदों के हल हुए बगैर और सांगोपांग क्रांतिकारी लाइन पर सही समझदारी बनाये बगैर किसी अखिलभारतीय क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी का गठन न तो संभव है और न ही वांछनीय ।

मगर एक अखिल भारतीय पार्टी का गठन (formation) न हो पाने का कारण इन गम्भीर मतभेदों तक सीमित नहीं हैं । यदि यह इतने तक सीमित होता तो इस बात का तो दावा नहीं किया जा सकता कि साढ़े तीन दशकों के प्रयासों में भारत के क्रांतिकारी कम्युनिस्ट अपनी पार्टी गठित कर ही लेते, परन्तु इन्हें हल करने की प्रक्रिया तो जरूर स्पष्टतः दिखाई पड़ती । आज हम ऐसी किसी सर्व भारतीय एकता प्रक्रिया को किसी भी रूप में अंजाम नहीं दे पा रहे हैं । आज हमारे क्रांतिकारी कम्युनिस्ट शिविर के घटक संगठनों में जो भी एकताएं हो रही हैं वे द्विपक्षीय या त्रिपक्षीय ही हैं । हम ऐसी किसी बहुपक्षीय सर्व-भारतीय परिघटना को अंजाम नहीं दे पा रहे हैं, जिससे सर्वहारा की अखिल भारतीय पार्टी का गठन हो सके । हमारे पास यह मानने का कोई आधार नहीं है कि क्रांतिकारियों की नीयत की खोट या क्रांतिकारी ईमानदारी के कारण पार्टी-गठन नहीं हो पा रहा है उल्टे हम यही पाते हैं कि अधिकांश संगठन ईमानदारी व निष्ठा के साथ क्रांति कर्म

में लगे हुए हैं । और सभी, कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के बीच के बिखराव से परेशान हैं और शिविर को एकजुट करने की कोशिशें समय-समय पर करते रहे हैं ।

निष्ठा या नीयत पर संदेह किये बगैर इस बात से इंकार नहीं है कि शिविर में वास्तविक मतभेदों के साथ-साथ विभिन्न संगठनों के बीच एक दूसरे के बारे में गलत (मनोगत) मूल्यांकन या पूर्वाग्रह मौजूद हैं । परन्तु ये गलत मूल्यांकन या पूर्वाग्रह हमारे बिखराव की जड़ में नहीं हैं । किसी सर्वभारतीय एकता प्रक्रिया के अस्तित्व में आने के साथ ही हम पायेंगे कि ये नकारात्मक मूल्यांकन/पूर्वाग्रह काफी दोयम दर्जे की चीजें हैं और एकता की असली अड़चनें विचारधारात्मक,राजनीतिक -सांगठनिक मुद्दे ही हैं ।

आज यदि इन गम्भीर राजनीतिक-सांगठनिक मतभेदों को सुलटाने की कोई सर्व भारतीय प्रक्रिया शुरू नहीं हो पा रही है तो इसका मुख्य कारण अखिल भारतीय पार्टी के गठन के प्रति हमारी पहुंच (approach) या प्रणाली (methodology) की दिक्कतें हैं । जब तक पहुंच या प्रणाली सम्बन्धी इन बुनियादी दिक्कतों को दूर नहीं किया जाता है तब तक राजनीतिक-सांगठनिक मतभेदों को सुलटाने की सीमाऐं बनी रहेंगी और अखिल भारतीय पार्टी का गठन टलता ही रहेगा । इस आलेख में हम पार्टी गठन के प्रति पहुंच/प्रणाली सम्बन्धी कुछ बुनियादी दिक्कतों को चिह्नित करेंगे और इन्हें दूर करने के लिये सही मार्क्सवादी-लेनिनवादी पहुंच/प्रणाली को स्थापित भी करेंगे ।

I

पार्टी-गठन से सम्बन्धित उक्त विवेचना को शुरू करने से पहले हमें वर्तमान वस्तुस्थिति की कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं पर विचार कर लेना चाहिये जो कि संदर्भवश इस कार्य को प्रभावित करती हैं ।

सर्वप्रथम यह कि आज स्वतः स्फूर्त मजदूर आन्दोलन निहायत कमजोर हैं । यह बात भारत के लिये भी सही है और शेष विश्व के लिये भी सामान्यतः सही है । विगत दिनों में इटली, फ्रांस या फिर पश्चिमी यूरोप/अमेरिका व कुछ अन्य जगहों के मजदूर वर्ग में कुछ सक्रियता देखी गयी है लेकिन इसे कोई स्थायी या दीर्घकालिक प्रवृत्ति नहीं माना जा सकता और यह कहीं से भी वैसी मजदूर संघर्षों की लहर नहीं है जो कि उन्नीसवीं सदी के अन्त एवं 20 वीं सदी की शुरूआत में इन देशों में थी । अर्थात एक सकारात्मक बाहरी उत्प्रेरक के बतौर यह कहीं से भी भारत में पार्टी-गठन के कार्य को गति नहीं दे रहा है । स्वयं भारत का मजदूर आन्दोलन, शिथिलता व निराशा के चरण से गुजर रहा है । विगत दिनों में कुछ औद्योगिक केन्द्रों में अपवादस्वरूप ही कहीं-कहीं छिट-पुट पहलकदमीं देखी गयी है, परन्तु मजदूर वर्ग की इस सक्रियता की प्रकृति भी रक्षात्मक है; यानी कि ये लड़ाइयां पूंजीपति वर्ग के हमले के कारण पहले हासिल स्थिति में आ रही गिरावट को थामने के लिये लड़ी गयीं । सामान्य तौर पर भारत का मजदूर वर्ग शांत है और वर्तमान साम्राज्यवादी-पूंजीवादी आक्रमण का जवाब देने के लिये सड़कों पर नहीं उतर रहा है । सामान्य तौर पर वह जोश से ओत-प्रोत या संघर्ष करने की मानसिकता में नहीं है । वस्तुस्थिति का यह पहलू मजदूर वर्ग की पार्टी के गठन के कार्य को नामुमकिन तो नहीं बना देता है क्योंकि

मजदूर वर्ग की पार्टी का गठन या निर्माण स्वतः स्फूर्तता के भरोसे नहीं किया जाता है । लेकिन यह इसकी कुछ सीमाएं तो निश्चित तौर पर बांध देता है जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे ।

दूसरी बात यह कि चीन में '70 के दशक के अन्त में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद विश्व सर्वहारा ने अपना अन्तिम मुक्त क्षेत्र खो दिया है । इसके साथ ही विश्व सर्वहारा का प्रथम समाजवादी अभियान समाप्त हो गया है । अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा के इस प्रथम अभियान की समाप्ति एक हार में हुई है । इस हार में अन्तर्राष्ट्रीय सर्वहारा किसी योजनाबद्ध ढंग से पीछे नहीं हट पाया है । उसका सदर मुकाम ध्वस्त हो चुका है और उसकी विभिन्न टुकड़ियां छितरा गयीं हैं । ऐसे में विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन अनेक विकारों एवं गैर सर्वहारा प्रवृत्तियों से ग्रसित है । चूंकि विश्व सर्वहारा का दूसरा समाजवादी अभियान अभी शुरू नहीं हो पाया है, इसलिये इस संधिकाल में आन्दोलन की विकृतियां और बीमारियां किसी भी देश में पार्टी-निर्माण/गठन के कार्य को और कठिन बना देती हैं । पार्टी कार्यदिशा (line)से सम्बन्धित जो मुद्दे कल तक तय थे, वे आज एक के बाद एक खुले सवाल बनते जा रहे हैं । जटिल परिस्थिति, विगत दो-तीन दशकों में, जटिलतर होती गयी है ।

तीसरी अहम् बात यह है कि भारत में कम्युनिस्ट आन्दोलन का इतिहास पुराना है और यहां अखिल भारतीय पार्टी का गठन कोई ऐसी परिघटना नहीं है जो कम्युनिस्ट आन्दोलन के शुरूआती दौर में होती है । न ही इस समय कम्युनिस्ट आन्दोलन की वह स्थिति है जो नक्सलबाड़ी किसान उभार के समय थी । नक्सलबाड़ी किसान उभार के ठीक बाद के समय में अधिकांश कम्युनिस्ट क्रांतिकारी एक ही पार्टी से विद्रोह करके आये थे । सी.पी.आई(एम.) के नव- संशोधनवादी नेतृत्व के विरूद्ध विद्रोह करके विभिन्न राज्यों व जिलों से आने वाले कम्युनिस्ट क्रांतिकारी अखिल भारतीय तालमेल कमेटी में शामिल हुए थे । उस समय उनकी खुद की विचारधारात्मक-राजनीतिक-सांगठनिक अवस्थिति एक ग्रुप के बतौर निश्चित रूप-रंग लिये हुए नहीं थी । नव-संशोधनवाद के विरूद्ध विद्रोह ही उनकी पहचान थी । आज स्थिति वैसी नहीं है । आज अधिकांश कम्युनिस्ट क्रांतिकारी ग्रुप इस लम्बी अवधि में अपनी निश्चित विचारधारात्मक -राजनीतिक-सांगठनिक पहचान बना चुके हैं । वे पार्टी के बतौर अपने पूर्व-पार्टी संगठनों को संचालित कर रहे हैं । यह कोई नकारात्मक व दिक्कततलब बात नहीं है । लेकिन इस बात का यह मतलब जरूर है कि बीसवीं सदी के तीसरे-चौथे दशक में पार्टी-गठन की जो प्रक्रिया थी या फिर 60 के दशक के अन्त में पार्टी गठन की प्रक्रिया जिस तरह से (आधी-अधूरी) विकसित हुई, 21वीं सदी की शुरूआत में पार्टी-गठन की प्रक्रिया इनमें से किसी का भी दोहराव नहीं हो सकती है ।

चौथी अहम् बात यह है कि आज पार्टी-गठन के लिये कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के पास एक सुगठित विचारधारा है जिसके सदुपयोग से पार्टी कार्यदिशा सम्बंधी जटिल से जटिल मुद्दे हल किये जा सकते हैं । इसके साथ-साथ पिछली डेढ़ शताब्दियों के अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन की सशक्त विरासत भी कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की थाती है । इस विरासत के सकारात्मक- नकारात्मक अनुभव हमें अनेक गलतियां करने से बचा सकते हैं । तमाम टूट-बिखराव के बावजूद चूंकि अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन अपनी निरंतरता बनाये रखने में सफल रहा है इसलिये हम उस अपरिपक्व स्थिति में नहीं फंसे हुए हैं कि हमें नये सिरे से पहिये का आविष्कार करना पड़े । मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओ विचारधारा के रूप में हमारे पास वह विज्ञान है जिसकी मदद से पार्टी-गठन की पेचीदा से पेचीदा समस्या हल की जा सकती है ।

अपनी विवेचना को आगे बढ़ाने से पहले हम इस महत्वपूर्ण बात को रेखांकित करना चाहेंगे कि पार्टी कार्यदिशा (party line) का मुद्दा, पार्टी-गठन की प्रक्रिया से कहीं से भी पृथक नहीं है । यह उससे अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ है । बिना कार्यदिशा पर आम सहमति के कोई क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी गठित नहीं की जा सकती । पार्टी के पास कोई न कोई एकीकृत कार्यदिशा जरूर होनी चाहिये । यह जरूरी नहीं है कि उस कार्यदिशा पर सभी पार्टी सदस्यों की सहमति हो । लेकिन यह जरूरी है कि समग्र पार्टी एकीकृत कार्यदिशा पर अमल करे । समग्र पार्टी के अमल द्वारा ही तय हो सकता है कि पार्टी की कार्यदिशा समाज की गति व इंकलाब की आवश्यकताओं से मेल खाती है या फिर इसमें किन्हीं बदलावों की आवश्यकता है । गठित पार्टी के भीतर कार्यदिशा पर मतभेद और उनसे पैदा होने वाला दो लाइनों का संघर्ष पार्टी के विकास का रास्ता प्रशस्त करता है । मगर ऐसी पार्टी का गठन जिसने अमल के लिये एकीकृत कार्यदिशा ही तय न की हो अवांछनीय ही नहीं अकल्पनीय भी है । एक साथ कई कार्यदिशाओं पर अमल करने वाला निकाय कोई संघात्मक संस्था तो हो सकती है, कम्युनिस्ट पार्टी नहीं । इसलिये कार्यदिशा के सवाल पर आम सहमति बनाना पार्टी गठन की प्रक्रिया का केन्द्रीय मुद्दा है ।

II

आज हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर में ऐसे संगठन हैं जो यह मानते हैं कि शिविर के भीतर वे एक ग्रुप नहीं बल्कि पार्टी हैं । एक पार्टी की हैसियत से ये कांग्रेसें या कान्फ्रेन्सें करते हैं । ऐसे भी कई संगठन हैं जो कांग्रेस तो नहीं करते फिर भी वे अपने आप को ग्रुप से ऊपर, उससे ज्यादा सुगठित, पार्टी मानते हैं । अतः खुद को पार्टी मानने वाले कई संगठन हैं । इसके दूसरे छोर पर हमारे देश में एक ऐसा संगठन भी मौजूद है जो कि खुद को तो सर्वहारा संगठन मानता है लेकिन वह किसी कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर के ही वजूद से ही इंकार करता है । यानी कि उसका मानना है कि उसके अलावा देश में और कोई दूसरा सर्वहारा संगठन नहीं है । दोनों ही अवस्थितियां भौतिक यथार्थ को नकारती हैं और पार्टी-गठन के प्रति एक बेहद दिक्कत तलब पहुंच को जन्म देती हैं । पहली अवस्थिति के लिये पार्टी-गठन कोई गम्भीर कार्यभार नहीं है क्योंकि उनकी नजर में पार्टी गठित हुई पड़ी है, अब इसमें केवल अन्य संगठनों को विलीन होना है । दूसरी अवस्थिति के लिये भी अन्तः ग्रुप एकता कोई कार्यभार नहीं बनता क्योंकि उन्हें तो समाज में काम करते हुए पार्टी निर्माण (party building) करना है और अंतः ग्रुप एकता द्वारा पार्टी-गठन (party formation) उनकी कार्य सूची में है ही नहीं । समाज में काम करते हुए जिस हद तक नये लोग उनके संगठन से जुड़ेंगे उस हद तक उनके लिये पार्टी-गठन होता रहेगा । यह उप उत्पाद के बतौर होगा, अपने आप में पार्टी-गठन उनका केन्द्रीय कार्यभार नहीं है ।

सर्वहारा मानव इतिहास का एक मात्र ऐसा वर्ग है जो कि निजी सम्पत्ति का पूर्णतः निषेध करता है । चूंकि उसके वर्ग के भीतर निजी सम्पत्ति के संचालन, उपयोग, विकास को लेकर कोई झगड़ा नहीं है इसलिये इस आधार पर उसके भीतर कोई धड़ेबन्दी सम्भव नहीं है । अतः उसे अपने भीतर इन मामलों को निपटाने के लिये एक से ज्यादा पार्टियों की

आवश्यकता नहीं पड़ती है । और चूंकि निजी सम्पत्ति के पूर्ण निषेध पर मानव समाज के सभी वर्गों से सर्वहारा का किसी न किसी तरह का अन्तर्विरोध बनता है इसलिये उसे अपने ऐतिहासिक मिशन की पूर्ति तक, वर्ग विहीन समाज की स्थापना तक, एक एकीकृत सशक्त पार्टी की आवश्यकता होती है । यदि इतिहास के किसी दौर में, किसी देश विशेष में सर्वहारा के अनेक राजनीतिक संगठन अस्तित्व में आ जायें तो यह उसकी वर्ग चेतना के निम्न स्तर की अभिव्यक्ति है और इस स्थिति से उबर कर ही वह पार्टी का गठन कर सकता है । जब तक वर्ग चेतना इतनी उन्नत न हो जाये कि सर्वहारा अपने आपको एकीकृत पार्टी में संगठित कर ले, तब तक यही माना जाना चाहिये कि उसकी बिखरी हुई टुकड़ियां ग्रुप मात्र हैं । महज नाम बदल लेने से, अपने आप को ग्रुप की जगह पार्टी कहने लगने से, वर्ग चेतना उन्नत नहीं हो जाती है ।

एक पार्टी, किसी ग्रुप से गुणात्मक अर्थों में उन्नत चीज होती है । किसी पार्टी के गठन की अर्हताऐं भी देश-काल सापेक्ष होती हैं । पिछली सदी के तीसरे व चौथे दशक में सी.पी.आई. के गठन के लिये जो अर्हताऐं थीं वे आज 21वीं सदी के पहले दशक में पार्टी-गठन के लिये अपर्याप्त हैं । आज पार्टी-गठन के लिये कहीं उच्च स्तर की चेतना चाहिये । उदाहरण के लिये समाजवादी समाज के भीतर चलने वाले वर्ग-संघर्ष की गहरी समझदारी के बिना उस दौर में पार्टियों का गठन हुआ, परन्तु आज महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के महत्व को आत्मसात किये बगैर किसी पार्टी का गठन नहीं किया जा सकता है । इसी बात को संप्रेषित करने के लिये हम एक दूसरा उदाहरण ले लेते हैं क्रांतिकारी चेतना के जिस स्तर पर पहले इंटरनेशनल का गठन किया गया उसी स्तर की चेतना पर दूसरे इंटरनेशनल का गठन नहीं किया गया और जिस स्तर की चेतना पर कोमिंटर्न का गठन हुआ वह उसके पहले के दोनों प्रयासों से कहीं उन्नत थी । यानी कि इतिहास का हर काल अपने आप में विशिष्ट होता है और वह अपने काल की चुनौतियों से निपटने योग्य पार्टी के गठन की मांग करता है । आज हमारे देश में जो भी मार्क्सवादी-लेनिनवादी निकाय हैं, उनमें से किसी की भी चेतना ऐसी नहीं है कि वह अपने आप को पार्टी कह सके । उक्त बात, भारत के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर के बारे में हमारी महज मनोगत नकारात्मक राय नहीं है । यदि वस्तुतः हम में से कोई भी मार्क्सवादी-लेनिनवादी निकाय एक पार्टी स्तर का होता तो वह कम से कम राष्ट्रीय स्तर पर अपनी राजनीतिक उपस्थिति दर्ज करवा रहा होता । हम में से कोई भी न तो राष्ट्रीय राजनीति की कार्यसूची को तय करता है और न ही उसे किसी हद तक प्रभावित ही कर पा रहा है । अभी हम में से कोई शासक वर्ग के लिये राजनीतिक चुनौती नहीं है । हम ज्यादा से ज्यादा देश के कुछ छोटे हिस्सों में उसकी कानून व्यवस्था के लिये सिरदर्द हैं, खतरा भी नहीं । राष्ट्रीय पैमाने पर तो क्या, प्रदेश स्तर पर भी चुनाव बहिष्कार के संगठनों के नारे उत्पीड़ित जनता द्वारा अनसुने कर दिये जाते हैं । जनता के जीवन से इतनी बेमेल कार्यनीति किसी ग्रुप की ही कार्यनीति हो सकती है, एक पार्टी की नहीं । कोई पार्टी भौतिक यथार्थ को इस हद तक अस्वीकार नहीं कर सकती है । हम यह नहीं कहना चाह रहे हैं कि पार्टियां गलतियां नहीं करती हैं । गलतियां तो पार्टी भी कर सकती है, लेकिन पार्टी उस गलती को बार-बार दशकों तक दोहरायेगी नहीं, उसके भीतर सार-संकलन का एक सुव्यवस्थित ढांचा तथा सही सार-संकलन के लिये आवश्यक परिपक्वता होती है ।

कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर में अनेक घटक अपने आप को 'दी पार्टी' (The party) नहीं मानते । वे अपने आप को सर्वहारा की 'ए पार्टी' (A party) बताते हैं । ऐसा कह कर वे इस बात के लिये गुंजाइश छोड़ते हैं कि

मार्क्सवादी-लेनिनवादियों के और भी निकाय हैं, जिनसे एकता कर उन्हें सर्वहारा की अखिल भारतीय पार्टी (दी पार्टी) का गठन करना है । ये साथी ऐसा नहीं मानते कि शेष मार्क्सवादी-लेनिनवादियों को उनमें आकर विलीन होना है । निःसन्देह 'ए पार्टी' की अवस्थिति 'दी पार्टी' की अवस्थिति से बेहतर है । परन्तु यह बात भी दिक्कततलब है क्योंकि यह तब भी पार्टी-गठन के प्रति एक गलत पहुंच को जन्म देती है । 'ए पार्टी' अवस्थिति से उपजने वाली पहुंच की तीन मुख्य दिक्कतें हैं :-

पहली बात यह कि साथियों की नजर में पार्टी की अवधारणा ढीली व कमजोर है । ये भावी अखिल भारतीय पार्टी और आज की 'ए पार्टी' की चेतना व संगठन को लगभग एक जैसी चीज मानते हैं । इनकी नजर में आज की 'ए पार्टी' और भावी 'दी पार्टी' में मुख्य अन्तर मात्रा का है । 'दी पार्टी' का आकार और समाज में प्रभाव आज की 'ए पार्टी' से बहुत बड़ा होगा । ये आज की 'ए पार्टी' और भावी 'दी पार्टी' में चेतना और संगठन के स्तर में किसी खास गुणात्मक भिन्नता की परिकल्पना नहीं करते हैं । इनकी अवधारणा में आज के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर का बिखराव यदि किसी तरीके से समाप्त हो जाय और वह एक झण्डे तले संगठित हो जाये तो उसका कुल योग ही 'दी पार्टी' हो जायेगा, ज्यादा से ज्यादा उसका समाकलित योग (Integral whole) 'दी पार्टी' होगा । यदि पार्टी-गठन के सम्बन्ध में इनकी समझ इतनी सीमित न होती और ये सर्वहारा की भावी पार्टी को आज के मार्क्सवादी-लेनिनवादी निकायों से गुणात्मक अर्थों में भिन्न चीज मानते होते तो ये कतई अपने आप को 'ए पार्टी' कहने की गलती न करते । यदि ये अपनी वर्तमान स्थिति और सर्वहारा की भावी पार्टी के बीच का मुख्य अन्तर मात्रा का ही नहीं गुण का भी मानते होते तो ये निःसन्देह अपने आप को पार्टी के बजाय ग्रुप/पूर्व-पार्टी संगठन/ कमेटी ... कहते क्योंकि ये नये गुण को पैदा करने पर जोर देना चाहते होते ।

इसी से जुड़ी हुई दूसरी बात यह है कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर का गुणात्मक रूपान्तरण (पार्टी के बतौर संगठित होने) अन्य बातों के अलावा बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करता है कि हम कम्युनिस्ट क्रांतिकारी इंकलाब की कार्यदिशा (line) के प्रश्न के समाधान के प्रति क्या रुख रखते हैं । अपने आप को 'ए पार्टी' या 'दी पार्टी' मानने वाले साथियों की इस मुद्दे पर समझदारी सामान्यतः जड़ है । वे कार्यदिशा के उसी चौखटे से चिपके हुए हैं जिसे उन्होंने लगभग चार दशक पहले तय किया था । वे समाज की गतियों/ उप-गतियों को अनदेखा कर उसमें वर्तमान वर्ग संघर्षों का अध्ययन करने को तैयार नहीं हैं । यह उसी गैर-भौतिकवादी गैर-द्वन्द्ववादी चिन्तन प्रणाली का प्रतिफलन है जिसके तहत वे खुद को पार्टी समझने लगते हैं । जहां वे एक ओर अपने संगठन के कद और क्षमताओं के बारे में अतिरंजित मनोगत राय रखते हैं वहीं दूसरी ओर वे समाज को वहीं ठहरा हुआ मान कर चलते हैं जहां वह आधी शताब्दी पहले था ।

वस्तुनिष्ठता का यह अभाव समाज परिवर्तन के समग्र प्रभाव को नकारात्मक तरीके से प्रभावित करता हैं । यह पार्टी-गठन में भी आड़े आता है । शिविर के अन्य घटक संगठनों के बारे में असंतुलित मूल्यांकनों को जन्म देकर आपसी अन्तरक्रियाओं में यह व्यवहारिक दिक्कतों को तो जन्म देता ही है, इससे बड़ी बात यह है कि यह दृष्टिकोण पार्टी-गठन के लिये आवश्यक राजनीतिक बहसों को शुरू ही नहीं होने देता है क्योंकि पहले से तय (एवं अरसे से जड़) कार्यदिशा को ही यह बार-बार आरोपित करता है और पिछली क्रांतियों की नकल करने की कोशिश करता

है । वस्तुनिष्ठता से किनाराकशी करने वाला यह दृष्टिकोण इस संभावना की गुंजाइश ही नहीं छोड़ता कि इंकलाब की पूर्णतः सही (व मुकम्मल) कार्यदिशा अभी शिविर के किसी घटक संगठन के पास न हो और वह पार्टी-गठन की प्रक्रिया में, शिविर के संगठनों के आपसी संघर्ष में ही, स्थापित हो पाये ।

उक्त बातों से ही जुड़ी हुई और एक मायने में इनका परिणाम तीसरी बात यह है कि शिविर के ढेर सारे संगठन पार्टी-गठन की प्रक्रिया को द्विपक्षीय एकताओं की एक श्रृंखला के बतौर ही देखते हैं । वे यह सोचते ही नही हैं कि हमें चारों तरफ से पार्टी-गठन की कोशिश करनी चाहिये, कि हमें पार्टी गठन हेतु एक साथ समग्र शिविर में अंतर्क्रिया के लिये कदम उठाने चाहिये। 1903 के पहले 'इस्क्रा' अखबार द्वारा पार्टी-गठन के लिये समस्त रूसी क्रांतिकारियों को लामबन्द करने की शानदार नज़ीर के बावजूद हमारे यहां द्विपक्षीय एकताओं की श्रृंखला के बतौर ही सोचने और कार्य करने की प्रणाली विद्यमान है । यह सोच और व्यवहार इसके बावजूद है कि श्रृंखला बनने के साथ-साथ बीच से टूटती भी रहती है ।

हमारा यथार्थ यही है कि '60 के दशक में कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की अखिल भारतीय तालमेल कमेटी के प्रयास के बाद अगले साढ़े तीन दशकों तक पार्टी गठन हेतु हम द्विपक्षीय एकताओं की श्रृंखला कायम करके ही पार्टी-गठन के प्रयास करते रहे हैं । ऐसी बात नहीं है कि द्विपक्षीय एकताओं की कोई सार्थकता नहीं है । ये निश्चित तौर पर सार्थक व जरूरी हैं और आगे भी चलायी जानी चाहिये । परन्तु ये अखिल भारतीय पार्टी-गठन के लिये पर्याप्त नहीं हैं । जब तक समग्र शिविर को समेटने की विधि पर अमल नहीं किया जाता, जब तक चारों तरफ से पार्टी-गठन की कोशिशें नहीं की जाती, जब तक राजनीतिक मुद्दों को इन चौतरफा कोशिशों के केन्द्र में नहीं लाया जाता तब तक इन द्विपक्षीय (त्रिपक्षीय . ..) एकताओं का स्थायित्व व गुणवत्ता दोनों अति सीमित रहेंगी । उल्टे यदि राजनीतिक मुद्दों को केन्द्र में रखते हुए समग्र शिविर के स्तर पर पार्टी-गठन के लिये कदम उठाये जाते हैं, तब ये द्विपक्षीय एकताएं न केवल स्वयं ज्यादा स्थायी और ज्यादा गुणवत्ता की होंगी बल्कि इसके चलते अखिल भारतीय पार्टी के गठन में इसका योगदान भी बेहतर होगा । एकता के द्विपक्षीय प्रयासों के समानांतर, समग्र शिविर के स्तर की पार्टी-गठन की कार्यवाहियों पर हम आगे बातें करेंगे ।

स्वयं को पार्टी की गुणवत्ता का निकाय मानने वाली मनोगत सोच के ही समानांतर हमारे देश में एक संगठन ऐसा भी है जो किसी कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर के ही वजूद से ही इंकार करता है । यह सोच भी गैर भौतिकवादी है । इस संगठन का कहना है कि कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर अभी हाल तक मौजूद था, परन्तु अब वह विघटित हो चुका है । ये लोग यह नहीं बताते कि शिविर कब और कैसे विघटित हुआ । परन्तु आज इनके लिये पार्टी-गठन मुख्य कार्यभार इसलिये नहीं बनता क्योंकि ये भारत में अपने अलावा किसी और संगठन को सर्वहारा संगठन नहीं मानते। यह एक आत्मघाती सोच है । यह कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों के लिये कतई खुशी की बात नहीं है। यह शासक वर्गों के लिये खुशी की बात है । वे तो चाहेंगे कि सभी मार्क्सवादी-लेनिनवादी ऐसे ही मुंह फेर के बैठ जायें ।

III

मार्क्स ने एक टिप्पणी की थी कि 'सभी मृत पीढ़ियों की परम्परा जीवित मानव के मस्तिष्क में एक दुःस्वप्न के समान सवार रहती हैं' । मार्क्स ने यह टिप्पणी इस आशय से की थी कि सर्वहारा क्रांतियों को बुर्जुआ क्रांतियों के भूत से मुक्त होने की जरूरत है और भविष्य से प्रेरणा पाने की जरूरत है । एक बिल्कुल भिन्न संदर्भ में हम पाते हैं कि हम में से ढेर सारे साथी अपने दौर की परेशानियों को हल करने के लिये पुरानी सर्वहारा क्रांतियों की कमजोरियों को भी दोहराने की मानसिकता में आ गये हैं ।

पार्टी-गठन के मामले में यदि विशिष्ट बात की जाय तो भारत के मार्क्सवादी- लेनिनवादियों में यह सोच रही है कि कार्यदिशा के मसले को सुलटाये बगैर पार्टी गठित कर ली जाय । निःसंदेह ऐसी पार्टी में धड़े या 'फैक्शन' विद्यमान रहेंगे और व्यवहारतः पार्टी किसी सफल कार्यदिशा पर काम नहीं कर सकेगी । इस प्रस्थापना के पीछे दो मुख्य दलीलें पेश की जाती हैं । दोनों इतिहास के उदाहरण हैं । पहली यह कि सामान्यतः आज तक जितनी सर्वहारा पार्टियां अस्तित्व में आयीं चाहे वह रूसी पार्टी हो या चीनी या कोई और, इनमें से कोई भी धड़ेबन्दी से मुक्त पार्टी नहीं थी हालांकि यह दीगर बात है कि ब्लाक या धड़ों की मौजूदगी को सीधे-सीधे स्वीकारा गया या नहीं । आगे यह कि जब धड़ेबन्दी को खत्म करने के औपचारिक निर्णय लिये भी गये तब भी धड़ेबन्दी किसी न किसी रूप में विद्यमान ही रही । इसलिये इस यथार्थ को स्वीकार कर लिया जाय और इसे मानते हुए पार्टी गठित कर दी जाय । दूसरी यह कि रूसी सामाजिक-जनवादी मजदूर पार्टी के विशिष्ट उदाहरण में अलग-अलग धड़ों को अपना अखबार एवं अपना साहित्य निकालने एवं अपनी अपनी कार्यदिशा के अनुरूप अमल करने की छूट 1903 के बाद भी थी और 1906 की एकता कांग्रेस के बाद भी रही । फिर भी रू.सा.ज.म.पा. अन्ततः इंकलाब करने में सफल रही, इसलिये हमें भी वैसा ही कर लेना चहिये ।

उक्त पहुंच दिक्कततलब व गलत है । इसलिये नहीं कि कम्युनिस्ट आन्दोलन का इतिहास ऐसा नहीं रहा है या रू.सा.ज.म.पा. का इतिहास ऐसा नहीं रहा है । यह इसलिये दिक्कत तलब है क्योंकि धड़े को कायम रहने देने वाली बात और पार्टी में एक केन्द्रक की जगह कई केन्द्रकों की मौजूदगी को छूट देना कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों का प्रस्थान बिन्दु नहीं हो सकता है, यह उनकी तमाम सदिच्छाओं एवं कोशिशों के बाद का दुःखद परिणाम ही हो सकता है । कम्युनिस्ट क्रांतिकारी हर हालत में सम्पूर्ण राजनीतिक व सांगठनिक एकता स्थापित करने की कोशिश करेंगे । इसके लिये वे एकता कांग्रेस से पहले आवश्यक तैयारी करेंगे, यानी कि आवश्यक राजनीतिक संघर्ष करेंगे जैसा कि 'इस्क्रा' ने 1903 के पहले क्रीडोपंथियों और अर्थवादियों के खिलाफ किया । रू.सा.ज.म.पा. की दूसरी कांग्रेस से पहले की तैयारी का ही परिणाम था कि कांग्रेस में लेनिन की कार्यदिशा हावी रही और लेनिन व उनके साथी कांग्रेस की बहुमत में रहे (जहां से बोल्शेविक नाम पड़ा) । यदि कांग्रेस के बाद मेंशेविक, कांग्रेस में अपनी कमजोर स्थिति को बदलने के लिये प्लेखानोव के साथ मिलकर दांवपेंच न करते तो रू.सा.ज.म.पा. में एक ही केन्द्रक बना रहता । 1906 में जब मेंशेविक कांग्रेस में बहुमत में हो गये तो बोल्शेविकों ने वैसे ही हथकंडे नहीं अपनाये जैसे मेंशेविकों ने 1903 के बाद अपनाये थे । चूँकि केन्द्रीय कमेटी के बाहर नीचे के पार्टी ढांचे में अधिकांश कमेटियां बोल्शेविकों की अवस्थिति पर खड़ी हो गयीं इसलिये बोल्शेविकों ने 1907 में पुनः कांग्रेस आहूत करके सांगठनिक दिक्कत को दुरुस्त करने की कोशिश की । फौरी तौर पर ऐसा हुआ भी। 1907 में

बोल्शेविक बहुमत में रहे और थोड़ी देर के लिये सांगठनिक संघात्मकता कम हुई । यहां मूल बात यह है कि बोल्शेविक 'एक पार्टी एक केन्द्रक' के सिद्धान्त को ही मानते थे । उन्होंने कभी भी अपनी ओर से संघात्मक पार्टी की अवधारणा नहीं स्वीकारी, और उन्होंने हमेशा ही संघात्मकता को समाप्त करके केन्द्रीयता को स्थापित करने की कोशिश की । पार्टी सदस्यता के मुद्दे पर भी लेनिन का संघर्ष एक ढीली-ढाली पार्टी की जगह एक सुगठित पार्टी की स्थापना के लिये था ।

इतिहास में अब तक कोई सर्वहारा पार्टी धड़ों/फैक्शनों से रहित नहीं रही है । इस बात का मूल कारण समाज में सर्वहारा के अलावा अन्य वर्गों (निजी सम्पत्ति में विश्वास करने वाले वर्गों) की मौजूदगी रही है । समाज में मौजूद गैर सर्वहारा विचार पार्टी को प्रदूषित करते रहते हैं। इससे पार्टी अपने आप को तब ही पूर्णतः बचा सकती है जब समाज में ऐसे विचार खत्म हो जायें, परन्तु इतिहास के उस मुकाम पर पार्टी की जरूरत नहीं बचेगी । लेकिन इस सच्चाई का यह मतलब नहीं कि पार्टी अपने भीतर गैर सर्वहारा विचारों को रियायत देकर गठित की जाय या गठन के बाद उन्हें बर्दाश्त करे । उल्टे सही बात यह है कि पार्टी अपने भीतर गैर सर्वहारा विचारों को ध्वस्त करके ही, उनके नुमाइंदे धड़ों को विखंडित करके ही, मजबूत होती है और अपने दायित्व का निर्वाह करने योग्य बनती है । गैर सर्वहारा विचारों से ग्रसित पार्टियां सर्वहारा क्रान्तियों की अगुवाई नहीं कर सकती हैं । इसीलिये जिस मुकाम पर पार्टी गठित हो, कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को अपनी ओर से पूरी-पूरी कोशिश करनी चाहिये कि गैर सर्वहारा विचारों से रहित एकाश्मिक (monolithic) पार्टी अस्तित्व में आये । यह विचार कि धड़ों/फैक्शनों को लिये-दिये पार्टी गठित कर ली जाय, पार्टी राजनीति में बुर्जुआ राजनीति का प्रदूषण है । विगत दशकों में भारत में मार्क्सवादी-लेनिनवादियों ने इस तरह के जो प्रयोग किये भी, उनके परिणाम भी नकारात्मक ही रहे ।

पार्टी के भीतर धड़ेबन्दी/फैक्शनबाजी को समाप्त करने का सबसे कारगर तरीका पार्टी के भीतर राजनीतिक एकता स्थापित करना है । राजनीतिक एकीकरण के बाद ही, धड़ेबन्दी को समाप्त करने के लिये सांगठनिक कदम कारगर हो सकते हैं । वैसे भी पार्टी की कार्यदिशा के सवाल पर एकता के बगैर, इस पर उलझनों व भ्रान्तियों के बने रहते समाज में पार्टी की गतिविधियां बेअसर बनी रहती हैं । ऐसी पार्टी न तो सर्वहारा व मित्र वर्गों को क्रांति के लिये लामबन्द कर सकती है और न ही क्रांतिकारी संकट की स्थितियों में वह सत्ता दखल के लिये सर्वहारा की अगुवाई कर सकती है । संकटकालीन स्थितियों में जब घटनाएं बहुत तेजी से घटती हैं, ऐसी पार्टी एक पुच्छलवादी पार्टी बनने के लिये अभिशप्त है । इन्हीं कारणों से आनन-फानन में पार्टी का गठन गलत है । पार्टी पूरी राजनीतिक तैयारी के साथ गठित की जानी चाहिये । पार्टी-गठन के पहले पार्टी कार्यदिशा के सवाल पर खुली व मुकम्मल बहस चलायी जानी चाहिये और कार्यदिशा के हर महत्वपूर्ण मुद्दों को सुलझाने के लिये बाकायदा संघर्ष किया जाना चाहिये । 1969 में सी.पी.आई.(एम.एल.) के गठन के पूर्व यह जटिल एवं श्रमसाध्य कार्य नहीं किया गया और बहुत जल्द इस गलती के नकारात्मक परिणाम हमारे सामने आने लगे । यदि ऐसा किया गया होता तो शायद '70 का दशक टूट-बिखराव का दशक न होकर, भारत की क्रांतिकारी शक्तियों के विकास का दशक होता । इतिहास बहुत सख्त शिक्षक होता है । वह क्रांतिकारियों की गलतियों को कतई अनदेखा नहीं करता है । हमने सी.पी.आई.(एम.एल.) के गठन के पहले भारतीय क्रांति की कार्यदिशा तय करने के लिये आवश्यक जद्दोजहद नहीं की और इस मुख्य गलती के परिणाम आज तक भोग रहे हैं । यदि हम आज भी इस जद्दोजहद से बचेंगे

(जैसे कि सामान्यतः हम में से ज्यादातर लोग शिविर के भीतर की पॉलिमिक्स को अगम्भीरता से अब भी ले रहे हैं और अपनी सांगठनिक गतिविधियों में ही मस्त हैं) तो इस पलायन की कीमत हम दशकों तक अदा करते रहेंगे ।

कोई भी क्रांति पूर्ववर्ती क्रांति का दोहराव नहीं होती है । हर क्रांति अपने आप में, अपनी विकास प्रक्रिया में, अपने तौर-तरीकों में नायाब होती है । अतः रूपों के स्तर पर किसी पूर्ववर्ती क्रांति को दोहराने की कोशिशें व्यर्थ साबित होती हैं । हर क्रांति अपने संगठनकर्ताओं से कल्पनाशीलता व साहस की मांग करती है । इसलिये क्रांति के ठहराव व परिस्थिति की जटिलता से परेशान होकर हमें पुरानी क्रांतियों के रूपों को, उनकी विकास-प्रक्रियाओं को दोहराने की कोशिशें नहीं करनी चाहिये । हमें पुरानी क्रांतियों का अध्ययन उनकी अन्तर्वस्तु,उनके अन्तर्विरोधों, उनके भीतर के राजनीतिक रूझानों के विकास को समझने के लिये अवश्य करना चाहिये । लेकिन परेशानियों से ऊब कर हमें उनके रूपों को दोहराने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए । इस मायने में हमें सर्वहारा क्रांतियों के भूतों से भी मुक्त होने की जरूरत है ।

IV

इस बात से शायद ही कोई इंकार करे कि आज भारत के मार्क्सवादी-लेनिनवादी अपनी गतिविधियां एक ऐसे वक्त में नहीं कर रहे हैं जब समाज में कोई उफनता हुआ मजदूर आन्दोलन हो । सभी सहमत होंगे कि आज भारत में मजदूर आन्दोलन बहुत सुप्त अवस्था में है, कि ज्यादातर मजदूर असंगठित हैं, कि बहुत थोड़े से मजदूर ही संगठित हैं और वे भी बहुत निम्न स्तर की ट्रेड-यूनियन गतिविधियां कर रहे हैं जिनकी प्रकृति कानूनवादी व अनुष्ठानिक है। ऐसे में एक सैद्धान्तिक सवाल उठाया जा रहा है कि क्या मजदूर वर्ग के अपने आन्दोलन के अभाव में किसी कम्युनिस्ट पार्टी का गठन किया जाना चाहिये ? सवाल उठाने वाले साथियों का मत है कि चूँकि कम्युनिस्ट पार्टी मजदूर वर्ग की अपनी पार्टी होती है इसलिये यदि यह तय है कि स्वतःस्फूर्त मजदूर आन्दोलन के अभाव में पार्टी-गठन व पार्टी-कार्यों में मजदूरों की हिस्सेदारी बहुत सीमित होगी तब जो चीज अस्तित्व में आयेगी वह सर्वहारा पार्टी नहीं हो सकती है । अतः कम्युनिस्ट पार्टी गठन के लिये तब तक इंतजार किया जाय जब तक मजदूर आन्दोलन '50 व '60 के दशक के ज्वार की तरह पुनः न उठने लगे । प्रकारान्तर से निष्कर्ष यह है कि तब तक हम अपना ग्रुप अस्तित्व ही बनाये व बचाये रखें, कि हम इतिहास द्वारा अभिशप्त हैं ।

इस प्रश्न का उत्तर हम पहले सैद्धान्तिक स्तर पर खोजेंगे और फिर कम्युनिस्ट आन्दोलन के एक उदाहरण से इस पर रोशनी डालेंगे ।

सर्वप्रथम प्रश्न की प्रस्तुति । सही प्रश्न यह बनता है कि कम्युनिस्ट आन्दोलन का मजदूरों के स्वतः स्फूर्त आन्दोलन से क्या रिश्ता है ?

निःसंदेह कम्युनिस्ट आन्दोलन अपने लक्ष्य और सारतत्व में मजदूर वर्ग का आन्दोलन है । यह वर्गविहीन समाज की स्थापना के लिये वर्ग सचेत मजदूरों का आन्दोलन है । और कम्युनिस्ट पार्टी मजदूर वर्ग के संगठन का उच्चतम रूप है । साथ ही साथ कम्युनिस्ट पार्टी मजदूर वर्ग का ही एक दस्ता होती है; उसका अगुवा दस्ता ।

परन्तु न तो कम्युनिज्म के लिये आन्दोलन और न ही कम्युनिस्ट पार्टी, स्वतः स्फूर्त मजदूर आन्दोलन की पैदाइश होती है । मजदूर वर्ग के स्वतः स्फूर्त आन्दोलन से जो अधिकतम चेतना पैदा हो सकती है वह ट्रेड-यूनियन चेतना है - यानी कि यह धारणा कि मजदूरों को अपने आपको ट्रेड-यूनियनों में संगठित करके, मालिकों से सामूहिक सौदेबाजी करने के लिये संघर्ष करना और आवश्यक श्रम कानून बनवाने के लिये सरकार पर दबाव डालना - जो कि विशुद्ध पूंजीवाद के दायरे की चेतना होती है, यह कहीं से भी समाजवादी या कम्युनिस्ट चेतना नहीं है । कम्युनिस्ट पार्टी के गठन के लिये आवश्यक चेतना यानी कम्युनिस्ट चेतना, स्वतः स्फूर्तता की पूजा का सीधे-सीधे निषेध है ।

जहां यह सही है कि कम्युनिस्ट पार्टी आम हड़तालियों की पार्टी नहीं होती है, वहां यह भी सही है अपने भीतर मजदूरों की भौतिक उपस्थिति के बिना कोई पार्टी कम्युनिस्ट पार्टी नहीं हो सकती है । बिना मजदूर सदस्यों के, बिना मजदूर संगठनकर्ताओं के कोई पार्टी, कम्युनिस्ट पार्टी कहलाने की हकदार नहीं है । अतः मार्क्सवादी-लेनिनवादियों की ऐसी पार्टी के गठन का कोई औचित्य नहीं है जिसमें मजदूर सदस्य न हों । परन्तु यह अपने आप में कोई स्वयंसिद्ध प्रमेय नहीं है कि मजदूर आन्दोलनों की सुप्त अवस्था के दौरान (जब स्वतः स्फूर्तता न हो) पार्टी में, मजदूर भर्ती नहीं होंगे । यद्यपि मजदूर वर्ग मानव इतिहास का सबसे अग्रणी वर्ग है और मानव इतिहास की सबसे अग्रणी विचारधारा 'वैज्ञानिक समाजवाद' उसकी विचारधारा है तो कोई कारण नहीं पेश किया जा सकता कि क्यों सामाजिक आन्दोलन की सुप्त अवस्था में गैर सर्वहारा वर्गों के सदस्य (विशेषकर शिक्षित लोग) तो वैज्ञानिक समाजवाद के प्रति आकर्षित होंगे, अग्रणी मजदूर नहीं । पिछली डेढ़ शताब्दियों के अनुभवों में भी यह पाया गया है कि वर्ग संघर्ष की सुप्त से सुप्त अवस्था में मजदूर कम्युनिज्म के प्रति आकर्षित होते आये हैं और आज भी हो रहे हैं । यह सही है कि मजदूर संघर्षों की सुप्त अवस्था में कम्युनिज्म के प्रति आकृष्ट होने वाले मजदूरों की गिनती कम होती है और उग्र दौर में ज्यादा । मगर इससे इतनी ही बात तय होती है कि कोई कम्युनिस्ट पार्टी एक जन-पार्टी का चरित्र अख्तियार कर पाती है या नहीं । इससे यह कतई तय नहीं होता कि कम्युनिज्म को समर्पित कोई मजदूर पार्टी गठित हो सकती है या नहीं । मजदूर संघर्षों की सुप्त अवस्था में कम्युनिज्म को समर्पित एक मजदूर पार्टी अस्तित्व में आ सकती है हालांकि ऐसे वक्त में वह मजदूरों की 'मास पार्टी' नहीं बन पायेगी । पार्टी गठन के दौरान इस भौतिक सीमा को स्वीकारना पड़ेगा, इसे कम्युनिस्ट अपनी चेतना की बदौलत लांघ नहीं सकते। मजदूर आन्दोलन की स्वतःस्फूर्तता इसी मायने में पार्टी-गठन की प्रक्रिया पर अंकुश लगाती है, वह पार्टी-गठन की संभावना को समाप्त नहीं कर देती है ।

मजदूर संघर्षों की सुप्त अवस्था जिस हद तक पार्टी-गठन की प्रक्रिया को प्रभावित करती है, उससे कहीं ज्यादा वह पार्टी निर्माण (पार्टी के बोल्शेविकीकरण) की प्रक्रिया को प्रभावित करती है । किसी पार्टी का बोल्शेविकीकरण कहीं ज्यादा मजदूर संघर्षों में उसकी हिस्सेदारी पर, उनके दौरान मजदूर वर्ग एवं समाज के सभी अन्य क्रांतिकारी वर्गों/तबकों की अगुवाई करने के अनुभवों पर निर्भर करता है । इस प्रक्रिया से गुजर कर ही पार्टी तपती है, निखरती है और फौलादी बनती है ।

अब बोल्शेविक पार्टी के ठोस उदाहरण से मामले की जांच की जाय । यह सही है कि इतिहास में ढेर सारी कम्युनिस्ट पार्टियां ऐसे समय में गठित हुई जब मजदूर संघर्ष तेज थे। सी.पी.आई. भी ऐसे ही समय में गठित हुई । परन्तु

बोल्शेविक पार्टी (जो कि कम्युनिस्टों के बीच अनुकरणीय पार्टी मानी जाती है) के बारे में यह बात पूर्णतः सही नहीं है । रू.सा.ज.म.पा. का गठन (1903 की कांग्रेस या 1898 की पहली कांग्रेस भी) ऐसे समय में हुआ जब मजदूर संघर्ष उफान पर थे । लेकिन जनवरी 1912 में जब बोल्शेविकों ने अपने आप को एक स्वतंत्र पार्टी के बतौर गठित किया तब मजदूर संघर्ष नितान्त सुप्त थे । वह 1905-1907 की क्रांति की विफलता के बाद स्तोलपिन प्रतिक्रियावाद का दौर था । हालांकि 1911 में जब बोल्शेविक अपने आप को स्वतंत्र पार्टी के बतौर गठित करने की तैयारी कर रहे थे तब रूसी मजदूरों का आन्दोलन पुनः कुछ-कुछ जोर पकड़ने लगा था लेकिन मजदूर आन्दोलन में असली उभार प्राग कांफ्रेन्स के तीन-चार महीने बाद ही आया जब अप्रैल, 1912 में जारशाही ने साइबेरिया की लीना खदानों के मजदूरों पर गोली चलायी और 500 मजदूर मार डाले । बोल्शेविक अपने इतिहास में स्वयं लिखते हैं ,

> " ... जनवरी 1912 में होने वाली प्राग कांफ्रेन्स ने ही मजदूर आन्दोलन के पुनर्जीवन की शुरूआत नोट की थी । लेकिन, क्रांतिकारी आन्दोलन की **असली उठान अप्रैल और मई 1912 में शुरू हुई**, जब कि साइबेरिया में लीना की सोने की खानों में मजदूरों पर गोली चलाने के सिलसिले में आम राजनीतिक हड़तालें होने लगीं ।" [सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास, कामगार प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ-171, शब्दों पर जोर हमारा]

इसी सिलसिले में स्तालिन ने लिखा,

> ''लीना के हत्याकांड से खामोशी की बर्फ पिघल गयी है और जन आन्दोलन की धारा फिर बह चली है । बर्फ टूट चुकी है । ..." (वही,पृष्ठ : 172)

वैसे जनवरी 1912 में बोल्शेविकों का स्वतंत्र पार्टी के रूप में गठन और आज भारत में पार्टी-गठन के बीच तुलना करना भी ठीक नहीं है । देश-काल की विभिन्नताएं दोनों मामलों को एक दूसरे से बिल्कुल अलग कर देती हैं । रूस में जहां बोल्शेविकों को बाकियों से अपने आप को अलग करते हुए एक स्वतंत्र पार्टी के बतौर संगठित करना था वहां आज भारतीय क्रांतिकारियों के समक्ष एकजुट होने का कार्यभार है ।

लेकिन बोल्शेविक पार्टी के 1912 के विशिष्ट उदाहरण से भी इतना तो साफ है कि यह कोई प्रमेय नहीं है कि कोई असली कम्युनिस्ट पार्टी तब ही गठित की जा सकती है जब मजदूर आन्दोलन उफान पर हो । लीना गोली काण्ड के बाद का इतिहास यह जरूर बताता है कि कोई कम्युनिस्ट पार्टी एक 'मास पार्टी' तब ही बन सकती है जब समाज में उग्र संघर्ष हो रहे हों । केवल उग्र मजदूर आन्दोलन के काल में ही मजदूरों के रेले के रेले कम्युनिस्ट कतारों में शामिल होने के लिये आते हैं ।मामले को खोलने के लिये अब हम उल्टा सवाल करना चाहेंगे । यदि यह प्रस्थापना मान ली जाय कि कम्युनिस्ट पार्टी तब ही गठित की जा सकती है जब समाज में उग्र मजदूर संघर्ष चल रहे हों तब ऐसे सुप्त काल में मार्क्सवादी-लेनिनवादियों को क्या करना चाहिये ?

बात सीधी सी है, और वह यह कि मजदूर आन्दोलन की सुप्त अवस्थाओं में यदि मजदूर कम्युनिज्म के प्रति आकर्षित नहीं हो रहे हैं तब क्या कम्युनिस्टों को मजदूरों के बीच जाना बन्द कर देना चाहिये, क्योंकि कम्युनिस्ट मजदूरों में

खालिस ट्रेड-यूनियन गतिविधियां करने तो जायेंगे नहीं । ट्रेड-यूनियन गतिविधियों के पीछे कम्युनिस्टों का मूल मकसद तो मजदूरों के बीच वैज्ञानिक समाजवाद की विचारधारा रोपना ही होता है । यदि यह सम्भव नहीं हो तो वहां जाना ही व्यर्थ हो जाता है । तब क्या कम्युनिस्टों को कोई और काम करना चाहिये मसलन पढ़ाई-लिखाई या फिर बुद्धिजीवियों के बीच कम्युनिज्म का प्रचार-प्रसार ? आखिर कम्युनिस्ट कोई धार्मिक मनोवृत्ति वाले लोग तो होते नहीं हैं कि जुम्मे के दिन मस्जिद जाना ही है । कम्युनिस्ट व्यवहारिक लोग होते हैं । वे बौद्ध भिक्षुओं की तरह घंटी बजाते नहीं रह सकते । वे जैसे भी सम्भव होगा क्रांति की तैयारियां करेंगे । वे न तो बेकार में अपना वक्त जाया करेंगे और न ही ट्रेड-यूनियनवादी बनने के लिये मजदूरों में पड़े रहेंगे । ऐसी किसी भी गतिविधि करते चले जाना जिसका क्रांति की तैयारियों में योगदान ही न हो या तो गैर मार्क्सवादी मूर्खता है या फिर निरा ढोंग ।

V

द्विपक्षीय एकताओं (bilateral unities) की एक श्रृंखला से गुजरते हुए पार्टी-गठन की प्रक्रिया को पूरा करने की सोच की एक बड़ी समस्या यह है कि यह हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आन्दोलन की कमजोरियों एवं विकारों का भी सुदृढ़ीकरण करती है (यहां हम पहले ही साफ कर देना चाहेंगे कि हम इस समस्या के बावजूद ऐसी कोशिशों को एक हद तक सार्थक मानते हैं । हम स्वयं भी इस दिशा में प्रयास करते रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे) । ऐसा इसलिये होता है कि आम तौर पर समानधर्मा संगठन, यानी राजनीतिक अवस्थितियां एवं सांगठनिक ढांचे व कार्यशैली में एक दूसरे के करीबी संगठन ही, इसके प्रयास कर पाते हैं । इस स्थिति में एक जैसी राजनीतिक अवस्थितियों की गलतियां/विसंगतियां/कमजोरियां भी एकता के उपरान्त बनीं रहती हैं या बाज मौकों पर पुख्ता भी होती हैं । मिसाल के तौर पर द्विपक्षीय एकता के लिये प्रयासरत यदि कोई दो संगठन नवजनवादी क्रांति की ही अपनी गलत समझदारी के चलते औद्योगिक मजदूरों को संगठित करने का काम नहीं करते हैं और अपनी सांगठनिक ताकत का मुख्य हिस्सा देहात में किसानों में ही लगा रहे हैं, तो एकता के बाद भी यह गलती ठीक नहीं हो पायेगी । यह इसलिये कि इस मुद्दे पर चूंकि दोनों के बीच कोई अन्तर्विरोध नहीं है इसलिये विकास भी नहीं हो पायेगा । लेकिन उक्त दिक्कत के बावजूद समानधर्मा संगठनों की एकता अच्छी बात है क्योंकि इससे राजनीतिक अवस्थितियों के इर्द-गिर्द शिविर का ध्रुवीकरण होने लगता है । ऐसा होने से पार्टी गठन हेतु वाद-विवाद (Polemics) के लिये बेहतर स्थिति तैयार होती है दूसरी बात यह कि जब कई समानधर्मा संगठन इकट्ठे हो जाते हैं तो अपने आकार में इजाफे के चलते वे अपनी लाइन को व्यवहार में उतारने की कहीं बेहतर स्थिति में आ जाते हैं । ऐसे में वे अपनी लाइन की असंगतियों को ज्यादा परख सकते हैं और ज्यादा समृद्ध सारसंकलनों के द्वारा अपने विकारों से मुक्त हो सकते हैं ।

लेकिन कम्युनिस्ट क्रांतिकारी शिविर की जड़ता तभी टूट सकती है, इसका राजनीतिक विकास तभी हो पायेगा, जब असमानधर्मा संगठन एक दूसरे से एकता करने की नीयत से अन्तरक्रियाएं करें । इसी स्थिति में अन्तर्विरोधी अवस्थितियों को समाप्त करने के लिये राजनीतिक संघर्ष होगा और विकास के दरवाजे खुलेंगे, जड़ता टूटेगी । अभी तक शिविर के विभिन्न घटक संगठनों की राजनीतिक अवस्थितियों में जो भी परिवर्तन आ रहे हैं, शिविर का जिस हद तक का भी विकास हो रहा है, वह मूलतः शिविर के बाहर शेष समाज के साथ शिविर के घटक संगठनों की अंतर्क्रिया से हो रहा है । यह

हमारा सौभाग्य है कि शिविर के अधिकांश संगठन समाज में गम्भीरता से अपनी-अपनी लाइन लागू करने की कोशिशें करते हैं । परन्तु यह हमारा दुर्भाग्य है कि एक दूसरे से अन्तर्क्रिया करके, शिविर में अपने बराबर के सक्षम लोगों से सीखने के अवसर हम बहुत कम तलाशते हैं । इस बुरी स्थिति को दूर करना निहायत जरूरी है । यह तभी हो सकता है जब हम समग्र शिविर के एक साथ, एकीकरण की विधियां/तौर-तरीके निकालेंगे । द्विपक्षीय एकताओं के समानान्तर, और इनके ऊपर वरीयता देते हुए, हमें चारों ओर से समग्र शिविर की एकता के प्रयास करने होंगे ।

शिविर के भीतर के राजनीतिक अन्तर्विरोधों पर संघर्ष करके उच्च धरातल की एकता कायम करने के अलावा यह भी जरूरी है कि शिविर के भीतर जो वर्तमान एकता मौजूद है उसे पुख्ता किया जाय । यह तभी हो सकता है जब ठोस मुद्दों पर इसे पुख्ता करने के लिये विशिष्ट कार्यवाहियां की जायें । मिसाल के तौर पर हमारे शिविर की समानता यह है कि हम संशोधन-वाद के विरोधी हैं । मगर संशोधनवाद और अपने बीच विभाजक रेखा खींचने के लिये हम शिविर के बतौर बहुत कम काम करते हैं । आज मजदूर आन्दोलन में हमारी क्रांतिकारिता का नहीं, संशोधनवादी विचारों का बोलबाला है । मजदूर आन्दोलन के भीतर संशोधनवाद की विभिन्न अभिव्यक्तियों को चिह्नित करने और उसके बरख्स क्रांतिकारी अवस्थिति को स्थापित करने का काम इंकलाब की सफलता के लिये एक निहायत जरूरी काम है । यह महत्वपूर्ण राजनीतिक कार्यभार लगभग छूटा हुआ है । यदि यह नहीं किया जाता तो मजदूर वर्ग भारतीय क्रांति की अगुवाई नहीं कर पायेगा। लेकिन इस कार्यभार को पूरा करने के लिये हम अपने संसाधनों एवं क्षमताओं को कहीं इकट्ठा नहीं कर पा रहे हैं । ऐसे महत्वपूर्ण काम तभी हो पायेंगे जब हम द्विपक्षीय एकता के दायरे में सोचते रहने से आगे बढ़ कर समग्र शिविर के सुदृढ़ीकरण के संदर्भ में सोचें और व्यवहारिक कदम उठायें ।

दरअसल द्विपक्षीय एकताओं की श्रृंखला से गुजरते हुए पार्टी गठित करने की थीसिस की मूल दिक्कत यह है कि वह पार्टी-गठन के लिये शिविर के गुणात्मक रूपान्तरण (राजनीतिक विकास) की आवश्यकता को काफी हद तक अनदेखा कर देती है । भारतीय क्रांति की सही कार्यदिशा की स्थापना एवं पार्टी-गठन की यह आवश्यक शर्त बन जाती है कि ऐसी प्रक्रियाओं /तौर-तरीकों को प्रोत्साहित किया जाय जो कि समग्र शिविर के स्तर की कार्यवाहियां हों, जो कि समानधर्मा संगठनों के बीच की अन्तर्क्रियाओं तक सीमित न हों । सर्वहारा की क्रांतिकारी कम्युनिस्ट पार्टी के गठन के लिये हमें हर प्रकार की संकीर्णता, अपवर्जिता और तद्जन्य कूपमंडूकता को तोड़ने के लिये व्यवहारिक कदम उठाने चाहिये ।

VI

अन्त में तौर-तरीकों के सम्बन्ध में कुछ बातें ।

हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आन्दोलन में आम तौर पर ऐसा नजरिया मौजूद है कि एकता/पार्टी-गठन तो विभिन्न मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठनों के नेताओं का काम है । इसमें संगठनों के कार्यकर्ताओं की भूमिका तो एकताओं पर मुहर लगा देने तक सीमित है । यह नजरिया गलत है, गैर क्रांतिकारी है, गैर जनवादी है । सर्वहारा की क्रांतिकारी पार्टी का गठन शिविर के सभी नेताओं व कार्यकर्ताओं की साझी जिम्मेदारी है जिसके लिये सभी को संघर्ष करना होगा । जब चारों

तरफ से पार्टी के गठन की कोशिशों की बात होती है तो इसका यह मतलब नहीं होता है कि संगठनों के कैडर इसके लिये बढ़-चढ़ कर संघर्ष न करें । संघर्ष से हमारा तात्पर्य पार्टी-गठन के लिये राजनीतिक संघर्ष में हिस्सेदारी, न कि केवल अपने आप को गठन की कार्यवाहियों के तकनीकी इंतजाम तक सीमित कर लेने की मानसिकता ।

इसमें कोई बहस नहीं कि नेता और कैडर की राजनीतिक क्षमताओं में अन्तर होता है । लेकिन यह सोचना कि नेताओं के बीच का विचार-विमर्श पार्टी-गठन के लिये पर्याप्त है, न तो सैद्धान्तिक तौर पर ठीक है और न ही इतिहास में कभी ऐसा हुआ । सैद्धान्तिक तौर पर यह चेतना के विकास के बारे में मार्क्सवादी समझदारी को छोड़कर 'जीनियस' (genius) के सिद्धान्त को स्थापित करना है । इतिहास के अनुभव भी ऐसे नहीं हैं । रू.सा.ज.म.पा. के चिर-परिचित उदाहरण को ही ले लिया जाय । 1903 में पार्टी के गठन के पहले की गतिविधियां नेताओं तक सीमित नहीं रखी गयीं थीं । लगभग सभी रूसी क्रांतिकारी उस दौर की बहसों में हिस्सेदारी कर रहे थे । यदि ऐसा न होता तो शायद वह गुणवत्ता पैदा न हो पाती जिसके आधार पर रूसी पार्टी का गठन हुआ । जैसे कि कम्युनिज्म में हर आदमी अपनी क्षमता भर काम करता है, वैसे ही पार्टी-गठन के कार्यों में भी हर नेता-कार्यकर्ता के क्षमताभर योगदान से ही हमारे शिविर का गुणात्मक रूपान्तरण हो पायेगा । निःसंदेह इसके लिये जरूरी है कि विभिन्न संगठनों के कैडर अपने संगठन की अवस्थितियों के अलावा हर महत्वपूर्ण मुद्दे पर अन्य संगठनों की अवस्थितियों से परिचित हों । इतना ही नहीं उन्हें उस पर अपनी मौखिक व लिखित राय भी प्रकट करनी चाहिये, और गलतियों को ठीक करने के लिये अपनी क्षमता भर संघर्ष करना चाहिये । मगर हमारे यहां संकीर्णता का आलम यह है कि अधिकांश संगठनों में ऐसा कोई तकनीकी इंतजाम नहीं होता कि दूसरे संगठनों का साहित्य उनकी कतारों तक पहुंच जाय । सामान्यतः कार्यकर्ताओं को दूसरे संगठनों का वही साहित्य पढ़ने को मिल पाता है जो उन्हें अपने स्थानीय स्रोतों से उपलब्ध हो पाता है । कहीं-कहीं तो कूपमंडूकता का यह आलम है कि स्टेट कमेटियों के स्तर के साथियों को भी दूसरे संगठनों का साहित्य अपने नेतृत्व द्वारा उपलब्ध नहीं करवाया जाता है । ऐसी हालत में कहां से हमारे कम्युनिस्ट क्रांतिकारी आन्दोलन में जीवन्त राजनीतिक बहसें हो पायेंगी और कहां से पार्टी-गठन के लिये आवश्यक उच्च चेतना पैदा हो पायेगी । इस कमी को दूर करना निहायत जरूरी है । हर संगठन के केन्द्रीय नेतृत्व को अपने यहां यह कार्यभार लेना ही चाहिये कि वे अपने संगठनों में शेष शिविर का साहित्य मंगवायें और उसे नियमित रूप से अपनी कतारों तक पहुंचाने का इंतजाम करें ।

कई साथियों का मत है कि आज शिविर में वह न्यूनतम एकता भी मौजूद नहीं है जिस पर खड़े हो कर समग्र शिविर के स्तर पर पार्टी-गठन की गतिविधियां शुरू की जा सके । यह मत गलत है । शिविर के भीतर एक स्तर की एकता है । उसके स्तर को ठीक से समझ कर, हमें उसी पर खड़े होकर उससे उच्च एकता स्थापित करने के लिये संघर्ष करना होगा और ऐसे संघर्ष के तौर-तरीके निकालने होंगे । ठोस उदाहरण लेकर यदि बात की जाय तो हम एक हद तक संयुक्त जन-कार्यवाहियां कर लेते हैं । दूसरे, हम पार्टी स्तर की राजनीतिक बहसों के लिये विभिन्न मुद्दों पर सेमिनार आयोजित कर लेते हैं । एकता की ऐसी अभिव्यक्तियों से इतना तो साफ है कि हमारे पास आगे बढ़ने की जमीन है । ऐसे में हमें पार्टी-गठन को लक्षित करते हुए संगठनों के बीच अन्तर्क्रियाओं को प्रोत्साहित करने वाले अन्य कार्यक्रम हाथ में लेने चाहिये । यहां हमें इस बात पर साफ रहना चाहिये कि जन-संगठन स्तर की साझी कार्यवाहियां अपने आप में पार्टी-गठन

का रास्ता साफ नहीं करतीं । पार्टी-गठन में ये परोक्ष तौर पर ही मददगार हैं । पार्टी-गठन के लिये हमें सीधे प्रत्यक्ष कदम उठाने होंगे । हमें सीधे प्रत्यक्ष तौर पर ऐसे कार्यक्रम हाथ में लेने होंगे जिनमें सर्वहारा की विचारधारा और भारतीय क्रांति की कार्यदिशा स्पष्टतः केन्द्रीय मुद्दा हो । चूंकि सेमिनारों/संगोष्ठियों के माध्यम से यह सम्भव है इसलिये ऐसी कार्यवाहियों की मात्रा बढ़ायी जानी चाहिये ।

लेनिन ने पार्टी-गठन की प्रक्रिया को आगे बढ़ाने के लिये एक अखिल-रूसी राजनीतिक अखबार का प्रस्ताव रखा था । ऐसे मंच की अहमियत को बताने के लिये, क्रांति के संगठनकर्ता के बतौर उसकी भूमिका को रेखांकित करने के लिये यहां हम लेनिन की बातों को दोहरायेंगे नहीं। यहां हम इतना ही कहेंगे कि शिविर की वर्तमान एकता के स्तर पर ऐसे मंच की स्थापना संभव है यदि शिविर के घटक संगठन इसके लिये अपनी संकीर्णता से मुक्त हो लें । माओ ने क्रांतिकारियों का आह्वान किया था, "सोचने का साहस जुटाओ, कर गुजरने का साहस करो"। माओ की बात हमारे आन्दोलन की वर्तमान स्थिति में खासी मौजू है । हमें अखिल भारतीय स्तर का अखबार/पत्रिका स्थापित करने का साहस करना चाहिये । ऐसे अखबार/पत्रिका की स्थापना की पेशकश, हमारा संगठन [पुनर्गठन कमेटी, भारत की कम्युनिस्ट लीग (मा.ले.)] करता है । हम चाहेंगे कि अन्य संगठन भी इसके लिये आगे आयें ।

वैसे हमारा मत रहा है कि पार्टी गठन को लक्षित करते हुए देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों को एक अखिल भारतीय तालमेल कमेटी की स्थापना के संदर्भ में भी सोचना चाहिये। हम पहले ही कह चुके हैं कि इस कमेटी या निकाय का नाम जो भी रख लिया जाय मूल बात उसके लक्ष्य और कार्यभारों पर एकमत होने की है । यदि ऐसे निकाय की स्थापना के लिये देश के कम्युनिस्ट क्रांतिकारी मन बनाते हैं तो हमारा संगठन इसमें क्षमता भर योगदान करेगा ।

उक्त प्रस्तावों के अलावा हम यह भी चाहते हैं कि शिविर के घटक संगठनों के पास पार्टी-गठन के लिये यदि वैकल्पिक प्रस्ताव हैं तो वे हमसे जरूर संपर्क करें । हमारी दिलचस्पी पूरे शिविर के स्तर पर पार्टी-गठन की चौतरफा प्रक्रिया शुरू करने में है । हमें इस बात का एहसास है कि यह भारत के मजदूरों-मेहनतकशों के जीवन की जरूरत है, और इसे आगे बढ़ाने का जिम्मा देश के मार्क्सवादी-लेनिनवादियों का है । कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों की अखिल भारतीय पार्टी का गठन, शब्द और भावना दोनों में, देश के मार्क्सवादी-लेनिनवादी संगठनों का केन्द्रीय कार्यभार बनाया जाय ।